मुनि श्रीनथमलजी

उपनिषद्, पुराण और महाभारत में श्रमण संस्कृति का स्वर

श्रमण परम्परा आत्म-विद्या की परम्परा है. वह उतनी ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन आत्म-विद्या है. भारतीय विद्याओं में आत्म-विद्या का स्थान सर्वोच्च है. जो व्यक्ति आत्मा को नहीं जानता, वह बहुत कुछ जानकर भी ज्ञानी नहीं बन पाता. शौनक ने अंगरा से पूछा—'भगवन् ! वैसा क्या है ? जिसे जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाय.'[१]

उपनिषदों में इसका उत्तर है—'आत्मा को जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है.' यह श्रमण-संस्कृति का प्रधान स्वर है.

आत्म-विद्या क्षत्रिय परम्परा के अधीन रही है. पुराणों के अनुसार क्षत्रियों के पूर्वज भगवान् ऋषभ हैं.[२] श्रीमद्भागवत-कार के अभिमत में भगवान् ऋषभ मोक्षधर्म के प्रवर्तक अवतार हैं.[३] भगवान् ऋषभ के सौ पुत्र थे. उनमें नौ पुत्र वातर-शन श्रमण बने. वे आत्म-विद्या विशारद थे.[४] भगवान् ऋषभ ने जिस आत्म-विद्या और मोक्ष-विद्या का प्रवर्तन किया, वह सुदीर्घ काल तक क्षत्रियों के आधीन रही. बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् में हम देख पाते हैं कि अनेक ब्राह्मण ऋषि क्षत्रिय राजाओं के पास आते हैं और आत्म-विद्या का बोध लेते हैं.[५]

विन्टरनित्ज के मत में दार्शनिक चिन्तन (अथवा जागरण) ब्राह्मण युग के पश्चात् नहीं, पूर्व शुरु हो चुका था. स्वयं ऋग्वेद में ही कुछ ऐसे सूक्त हैं जिनमें देवताओं में और पुरोहितों की अद्भुत शक्ति में जनता के अन्धविश्वास के प्रति-कुछ सन्देह स्पष्ट हो चुके हैं.[६]

---

१. मुण्डकोपनिषद् १।१।३.

२. (क) ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वार्ध छनुषंगपाद, अध्याय १४, श्लोक ६०.
ऋषभं पार्थिव-श्रेष्ठं सर्व-क्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र-शताग्रजः ।
(ख) वायुमहापुराण, पूर्वार्ध, अध्याय ३३, श्लोक ५०.
नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभं पार्थिव-श्रेष्ठं सर्व-क्षत्रस्य पूर्वजम् ।

३. श्रीमद्भागवत ११।२।१६ (गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण)
तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ।

४. श्रीमद्भागवत ११।२।२०.
नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्म-विद्या विशारदाः ।

५. छान्दोग्य उपनिषद् ५।३, ५।११ (३ संस्करण), बृहदारण्यक ६।२, २।१ (२ संस्करण).

६. प्राचीन भारतीय साहित्य, प्रथम भाग, प्रथम खण्ड पृष्ठ १८२ (मोतीलाल बनारसीदास).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भारत के इन प्रथम दार्शनिकों को उस युग के पुरोहितों में खोजना उचित न होगा, क्योंकि पुरोहित तो यज्ञ को एक शास्त्रीय ढांचा देने में दिलोजान से लगे हुए थे. जबकि इन दार्शनिकों का ध्येय वेद के अनेकेश्वरवाद को उन्मूलित करना ही था जो ब्राह्मण यज्ञों के आडम्बर द्वारा ही अपनी रोटी कमाते हैं उन्हीं के घर में ही कोई ऐसा व्यक्ति जन्म ले-ले जो इन्द्र तक की सत्ता में विश्वास न करे, देवताओं के नाम से आहुतियां देना जिसे व्यर्थ नजर आए—बुद्धि नहीं मानती. सो अधिक संभव नहीं प्रतीत होता कि यह दार्शनिक चिन्तन उन्हीं लोगों का क्षेत्र था जिन्हें वेदों में पुरोहितों का शत्रु अर्थात् अरि, कंजूस, ब्राह्मणों को दक्षिणा देने से जी चुराने वाला—कहा गया है.

उपनिषदों में तो, और कभी-कभी ब्राह्मणों में भी, ऐसे कितने ही स्थल आते हैं जहाँ दर्शन अनुचिन्तन के उस युग-प्रवाह में क्षत्रियों की भारतीय संस्कृति को देन स्वतः सिद्ध हो जाती है .[१]

अपने पुत्र श्वेतकेतु से प्रेरित हो आरुणि पंचाल के राजा प्रवाहण के पास गया. तब राजा ने उससे कहा—'मैं तुम्हें जो आत्म-विद्या और परलोक-विद्या दे रहा हूँ, उस पर आज तक क्षत्रियों का प्रशासन रहा है. आज पहली बार वह ब्राह्मणों के पास जा रही है.[२]

परा और अपरा

माण्डुक्य उपनिषद् में विद्या के दो प्रकार किए गए हैं, परा और अपरा.[3] उसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—यह अपरा है. जिससे अक्षर-परमात्मा का ज्ञान होता है, वह परा है.[४]

महर्षि बृहस्पति ने प्रजापति मनु से कहा—'मैंने ऋक्, साम और यजुर्वेद, अथर्ववेद, नक्षत्र-गति, निरुक्त, व्याकरण, कल्प और शिक्षा का भी अध्ययन किया है तो भी मैं आकाश आदि पांचों महाभूतों के उपादान कारण को न जान सका.'[५] प्रजापति मनु ने कहा—'मुझे इष्ट की प्राप्ति हो और अनिष्ट का निवारण हो, इसी के लिये कर्मों का अनुष्ठान आरम्भ किया गया है. इष्ट और अनिष्ट दोनों ही मुझे प्राप्त न हों, इसके लिये ज्ञानयोग का उपदेश दिया गया है. वेद में जो कर्मों के प्रयोग बताए गए हैं, वे प्रायः सकाम भाव से युक्त हैं. जो इन कामनाओं से मुक्त होता है, वही परमात्मा को पा सकता है. नाना प्रकार के कर्म मार्ग में सुख की इच्छा रखकर प्रवृत्त होने वाला मनुष्य परमात्मा को प्राप्त नहीं होता.[६]

पिता-पुत्र संवाद

ब्राह्मण पुत्र मेधावी मोक्ष-धर्म के अर्थ में कुशल था. वह लोक-तत्त्व का अच्छा ज्ञाता था. एक दिन उसने अपने स्वाध्याय परायण पिता से कहा :

'पिता ! मनुष्यों की आयु तीव्र गति से बीती जा रही है. यह जानते हुए धीर पुरुष को क्या करना चाहिए ? तात !

---

१. वही पृष्ठ १८३.

२. छान्दोग्य उपनिषद् ५।३।७ पृष्ठ ४७९.
यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान्गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच.
(ख) बृहदारण्यक ६।२।८ पृष्ठ १२८७.
यथेयं विद्येतः पूर्वं न कस्मिंचन ब्राह्मण उवास तां त्वहं तुभ्यं वक्ष्यामि.

३. १।१।४.

४. १।१।५.

५. महाभारत शान्तिपर्व २०१।८ (प्रकाशक—गीताप्रेस गोरखपुर).

६. महाभारत शान्तिपर्व २०१। १०-११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप मुझे उस यथार्थ उपाय का उपदेश कीजिए, जिसके अनुसार मैं धर्म का आचरण कर सकूं ?'

पिता ने कहा—'बेटा ! द्विज को चाहिए कि वह पहले ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन करे फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर के पितरों की सद्गति के लिए पुत्र पैदा करने की इच्छा करे. विधि-पूर्वक त्रिविध अग्नियों की स्थापना करके यज्ञों का अनुष्ठान करे. तत्पश्चात् वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करे. उसके बाद मौनभाव से रहते हुए संन्यासी होने की इच्छा करे.'

पुत्र ने कहा—'पिता ! यह लोक जब इस प्रकार से मृत्यु द्वारा मारा जा रहा है, जरा अवस्था द्वारा चारों ओर से घेर लिया गया है, दिन और रात सफलता पूर्वक आयुक्षय रूप काम कर के बीत रहे हैं, ऐसी दशा में भी आप धीर की भांति कैसी बात कर रहे हैं ?'

पिताने पूछा—'बेटा ! तुम मुझे भयभीत-सा क्यों कर रहे हो ? बताओ तो सही, यह लोक किससे मारा जा रहा है, किसने हमें घेर रखा है और यहां कौन से ऐसे व्यक्ति हैं जो सफलता पूर्वक अपना काम करके व्यतीत हो रहे हैं.

पुत्र ने कहा—'पिता ! देखिए यह सम्पूर्ण जगत् मृत्यु के द्वारा मारा जा रहा है. बुढ़ापे ने इसे चारों ओर से घेर लिया है. और ये दिन-रात ही वे व्यक्ति हैं जो सफलता पूर्वक प्राणियों की आयु का अपहरण स्वरूप अपना काम करके व्यतीत हो रहे हैं, इस बात को आप समझते क्यों नहीं ?'

'ये अमोघ रात्रियां नित्य आती हैं और चली जाती हैं. जब मैं इस बात को जानता हूं कि मृत्यु क्षणभर के लिये भी रुक नहीं सकती और मैं उसके जाल में फंसकर ही विचर रहा हूं तब मैं थोड़ी देर भी प्रतीक्षा कैसे कर सकता हूं ?'

'जब एक-एक रात बीतने के साथ ही आयु बहुत कम होती चली जा रही है तब छिछले जल में रहनेवाली मछली के समान कौन सुख पा सकता है ?'

जिस रात के बीतने पर मनुष्य कोई शुभ कर्म न करे. उस दिन को विद्वान् पुरुष 'व्यर्थ ही गया' समझे. मनुष्य की कामनाएं पूरी भी नहीं होने पाती कि मौत उसके पास आ पहुंचती है.

जैसे घास चरते हुए मेढे के पास अचानक व्याघ्री पहुंच जाती है और उसे दबोचकर चल देती है, उसी प्रकार मनुष्य का मन जब दूसरी ओर लगा होता है, उसी समय सहसा मृत्यु आ जाती है और उसे लेकर चल देती है. इसलिए जो कल्याणकारी कार्य हो, उसे आज ही कर डालिए, क्योंकि जीवन निःसन्देह अनित्य है. धर्माचरण करने से इहलोक में मनुष्य की कीर्ति का विस्तार होता है और परलोक में भी उसे सुख मिलता है.

अतः अब मैं हिंसा से दूर रहकर सत्य की खोज करूंगा, काम और क्रोध को हृदय से निकालकर दुःख और सुख में समान भाव रखुंगा तथा सबके लिये कल्याणकारी बनकर देवताओं के समान मृत्यु के भय से मुक्त हो जाऊंगा.

मैं निवृत्ति परायण होकर शान्तिमय यज्ञ में तत्पर रहूंगा. मन और इन्द्रियों को बस में रखकर ब्रह्म-यज्ञ में लग जाऊंगा ओर मुनि-वृत्ति से रहूंगा. उत्तरायण मार्ग से जाने के लिये मैं जप और स्वाध्याय रूप वाग्यज्ञ, ध्यान रूप मनोयज्ञ और अग्निहोत्र एवं गुरुसुश्रूषादि रूप कर्म-यज्ञ का अनुष्ठान करूंगा.

पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति,
श्वंतवद्भिरिव प्राज्ञः क्षेत्रयज्ञैः पिशाचवत्.

मेरे जैसा विद्वान् पुरुष नश्वर फल देनेवाले हिंसायुक्त पशुयज्ञ और पिशाचों के समान अपने शरीर के ही रक्त-मांस द्वारा किये जाने वाले तामसयज्ञों का अनुष्ठान कैसे कर सकता है ?

जिसकी वाणी और मन दोनों सदा भली भाँति एकाग्र रहते हैं तथा जो त्याग, तपस्या और सत्य से सम्पन्न होता है, वह निश्चय ही सब कुछ प्राप्त कर सकता है.

संसार में विद्या (ज्ञान) के समान कोई नेत्र नहीं है. सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है.

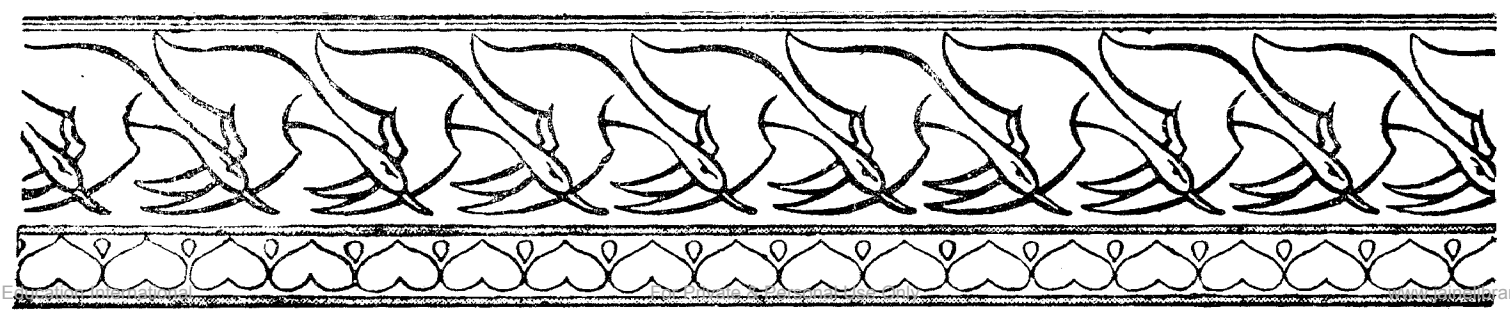

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजाऽविपा,
आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा.

मैं संतान रहित होने पर भी आत्मा में ही आत्मा द्वारा उत्पन्न हुआ हूं और आत्मा में ही स्थित हूं. आगे भी आत्मा में ही लीन हो जाऊंगा. सन्तान मुझे पार नहीं उतारेगी.

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं, यथैकता समता सत्यताच,
शीलंस्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं, ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः.

परमात्मा के साथ एकता तथा समता, सत्य-भाषण, सदाचार, ब्रह्मनिष्ठा दण्ड का परित्याग (अहिंसा), सरलता तथा सब प्रकार के सकाम कर्मों से उपरति—इनके समान ब्राह्मण के लिये दूसरा कोई धन नहीं है.

ब्राह्मण देव पिता ! जब आप एक दिन मर ही जायेंगे तो आपको इस धन से क्या लेना है अथवा भाई-बन्धुओं से आपका क्या काम है तथा स्त्री आदि से आप का कौन,सा प्रयोजन सिद्ध होने वाला है. आप अपने हृदयरूपी गुफा में स्थित हुए परमात्मा को खोजिए. सोचिए तो सही आपके पिता और पितामह कहां चले गए ?[१]

वैदिक विचार-धारा वह है, जो श्लोक में पिता ने पुत्र से कही. मनुस्मृति से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है. वहां लिखा है—'जो ब्राह्मण वेद पढ़े विना, सन्तान उत्पत्ति किए विना तथा यज्ञों का अनुष्ठान किए (ऋषि, ऋण, पितृऋण और देव-ऋण से उऋण हुए) विना संन्यास धारण की इच्छा करता है, वह नीच गति को प्राप्त होता है.[२] इस मान्यता के विपरीत मेधावी ने अपने पिता से कहा वह अवैदिक विचारधारा है. वह श्रमण-विचार धारा का मंतव्य है.[३]

पौराणिक धर्म कृष्ण के व्यक्तित्व को केन्द्र-बिन्दु मानकर विकसित हुआ है. कृष्ण का धर्म वैदिक सिद्धान्तों से भिन्न था.

कृष्ण का व्यक्तित्व उत्पत्ति से अवैदिक था.[४] ऐसे अभिमत को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत करते हुए लक्ष्मण शास्त्री ने लिखा है. 'पौराणिक धर्म की एक विशेषता यह है कि उसके मुकाबले में यज्ञ-संस्था एकदम पिछड़ गई. भागवत-धर्म में वेदविहित यज्ञों को दोषपूर्ण बतलाया गया है, उनकी निन्दा की गई है. इसके आधार पर इतिहास के कई पण्डित यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि पौराणिक-संस्कृति तथा वेदों की संस्कृति में विरोध है और पौराणिक धर्म वास्तव में अवैदिकों के वेदपूर्व काल से चलते आए धर्म की वह नवीन व्यवस्था है जिसे वैदिकों ने बड़े समन्वय पूर्वक तैयार किया है. उपपत्ति को सिन्ध प्रान्त में उत्खनन में पाए गए तीन हजार वर्षों के पूर्ववर्ती सांस्कृतिक अवशेषों से पुष्टि मिलती है. यह अनुमान किया है कि उस उन्नत संस्कृति के लोगों में योग-विद्या तथा लिंगरूप शिव की पूजा तो अवश्य विद्यमान थी, परन्तु उनमें वेदों की याज्ञिक याने यज्ञ पर आधारित संस्कृति नहीं थी. इस अनुमान के लिये पर्याप्त सामग्री इस उत्खनन में पाई गई है. ध्यानस्थ शिव की मूर्ति तथा पूजनीय शिश्न-समान लिंग वहां उपलब्ध हुए हैं.[५]

मार्कण्डेय पुराण में भी पिता और पुत्र का संवाद है. पिता नाम भार्गव है और पुत्र का नाम है सुमति. भार्गव ने सुमति से कहा—'पुत्र ! पहले वेदों को पढ़ो, गुरु सुश्रूषा में संलग्न रहो, भिक्षान्न खाओ, फिर गृहस्थ बनो, यज्ञ करो, सन्तान उत्पन्न करो, बनवासी बनो फिर परिव्राजक—इस क्रम से ब्रह्म की प्राप्ति करो'.[६]

---

१. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १७५, श्लोक ५-१४, ३६. ३१-३८.
२. मनुस्मृति ६-३७.
अनधीत्य द्विजो वेदान्, अनुत्पाद्य तथा सुतान्,
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च, मोक्ष मिच्छन् व्रजत्यधः ।
३. उत्तराध्ययन १४.
४. जर्नल आफ ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, भाग १२. भाग नं० ३, पृष्ठ २३२-२३७.
५. वैदिक संस्कृति का विकास पृष्ठ १५४-५५ (साहित्य एकादमी दिल्ली की ओर से हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि० द्वारा प्रकाशित).
६. मार्कण्डेय पुराण, अध्याय १०, श्लोक १०-१३ (श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता की वाणी सुन सुमति कुछ नहीं बोला. पिता ने अपनी बात को बार-बार दोहराया, तब सुमति मुस्कान भरते हुए बोला —'पिता, आपने जो उपदेश दिया, उसका में बहुत बार अभ्यास कर चुका हूं, अनेक शास्त्रों और शिल्पों का भी मैंने अभ्यास किया है. मुझे मेरे अनेक पूर्व-जन्मों की स्मृति हो रही है. मुझे ज्ञानबोध उत्पन्न हो गया हैं. मुझे वेदों से कोई प्रयोजन नहीं है. मैंने अनेक माता-पिता किये है.''[1]

संसार परिवर्तन के लम्बे वर्णन के बाद सुमति ने कहा—'पिता ! संसार-चक्र में भ्रमण करते-करते मुझे अब मोक्ष प्राप्ति कराने वाला ज्ञान मिल गया है. उसे जान लेने पर यह सारा ऋग्, यजुः और साम संहिता का क्रिया-कलाप मुझे विगुण सा लग रहा है. वह मुझे सम्यक् प्रतिभासित नहीं हो रहा है. बोध उत्पन्न हो गया है. त्र गुरु-विज्ञान से तृप्त और निरीह हो गया हूं. मुखे वेदों से कोई प्रयोजन नहीं. पिता ! मैं किपाक फल के समान इस अधर्माढ्य-त्रयीधर्म (ऋग् यजुः, साम-धर्म) को छोड़कर परमपद की प्राप्ति के लिये जाऊंगा.[2]

पिता ने पूछा : पुत्र ! यह ज्ञान तुझे कैसे सम्भव हुआ ? सुमति ने कहा—'पिता में पूर्वजन्म में परमात्मलीन ब्राह्मण संन्यासी था. आत्म-विद्या में मुझे परानिष्ठा प्राप्त थी. मैं आचार्य हुआ. अन्त में मरते समय मुझे प्रमाद हो आया. एक वर्ष का होते-होते मुझे पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई. मुझे जो जाति स्मरण ज्ञान हुआ है, उसे त्रयी-धर्म का आश्रय लेने वाले नहीं पा सकते.'[3]

यज्ञ

सोलह ऋत्विक्, यजमान और उसकी पत्नी—ये अठारह यज्ञ के साधन हैं. ये सब निकृष्ट कर्म के आश्रित और विनाशी हैं. जो मूढ़ 'यही श्रेय है' इस प्रकार इनका अभिनन्दन करते हैं, वे बार-बार जरा-मरण को प्राप्त होते रहते हैं.[4]

यज्ञ संख्या की उपयोगिता के प्रति सन्देह की भावना आरण्यक काल में भी उत्पन्न हो गई थी. तत्त्वज्ञानी के लिये आध्यात्मिक यज्ञ का विधान होने लगा था. तैत्तरीय आरण्यक में लिखा है : 'ब्रह्म का साक्षात्कार पाने वाले विद्वान् संन्यासी के लिये यज्ञ का यजमान आत्मा है. अन्तःकरण की श्रद्धा पत्नी है. शरीर समिधा है. हृदय वेदि है. मन्यु-क्रोध पशु है. तप अग्नि है और दम दक्षिणा है.[5]

ये स्वर इतिहास के उस काल में प्रबल हुए थे, जब श्रमण विचार-धारा कर्मकाण्ड को आत्म-विद्या से प्रभावित कर रही थी.

---

१. वही, श्लोक १४-२६

२. मार्कण्डेय पुराण, अध्याय १०, श्लोक २७-२८,३२.
एवं संसारचक्रेस्मिन्भ्रमता तात ! संकटे ।
ज्ञान मेतन्मया प्राप्तं, मोक्ष-सम्प्राप्ति कारकम् ।
विद्यते यत्र सर्वोयं, ऋग् यजुः साम संहिता ।
क्रिया कलापो विगुणो, न सम्यक् प्रतिभातिमे ।
तस्माद् यास्याम्यहं तातः. त्यक्तंवेमां दुःखसन्ततिम् ।
त्रयी-धर्म मधर्माढय. किंपाकफलसन्निभम् ।

३. मार्कण्डेय पुराण, अध्याय १०, श्लोक ३४-४२.
ज्ञानदान फलं ह्येतद्, यज्जाति स्मरणं मम ।
नह्येतत् प्राप्यते तात ! त्रयीधर्माश्रितैर्नरैः ।४२।

४. मुण्डकोपनिषद् १।२।७, पृष्ठ ३८.

५. तैत्तरीय आरण्यक प्रपाठक १०, अनुवाक ६४, भाग २ पृष्ठ ७७९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org